International Journal of Scientific Research in Science and Technology
© 2018 IJSRST | Volume 4 | Issue 8 | Print ISSN: 2395-6011 | Online ISSN: 2395-602X

सन् 1857 की क्रांति में अमर सिंह की भूमिका : एक अध्ययन

डॉ0 कुमारी रश्मि जया
एम.ए., पीएच.डी. (इतिहास)
बी.आर.ए. बिहार विश्वविद्यालय, मुजफ्फरपुर (बिहार)

1857 का विद्रोह, जिसे *प्रथम भारतीय स्वतंत्रता संग्राम, सिपाही विद्रोह* और *भारतीय विद्रोह* के नाम से भी जाना जाता है ब्रिटिश शासन के विरूद्ध एक सशस्त्र विद्रोह था। वह विद्रोह दो वर्षों तक भारत के विभिन्न क्षेत्रों में चला। इस विद्रोह का आरंभ छावनी क्षेत्रों में छोटी झड़पों तथा आगजनी से हुआ था परन्तु जनवरी माह तक इसने एक बड़ा रूप ले लिया । विद्रोह का अंत भारत में ईस्ट इंडिया कंपनी के शासन की समाप्ति के साथ हुआ और पूरे भारत पर ब्रिटिश ताज का प्रत्यक्ष शासन आरंभ हो गया जो अगले 90 वर्षों तक चला।

कई इतिहासकारों का मानना है कि उस समय के जनमानस में यह धारणा थी कि अंग्रेज उन्हें जबर्दस्ती या धोखे से ईसाई बनाना चाहते हैं। यह पूरी तरह से गलत भी नहीं था, कुछ कंपनी अधिकारी धर्म परिवर्तन के कार्य में जुटे थे। हालांकि कंपनी ने धर्म परिवर्तन को स्वीकृति कभी नहीं दी। कंपनी इस बात से अवगत थी कि धर्म पारम्परिक भारतीय समाज में विद्रोह का एक कारण बन सकता है। इससे पहले सोलहवीं सदी में भारत तथा जापान से पुर्तगालियों के पतन का एक कारण यह भी था कि उन्होंने जनता पर ईसाई धर्म बलात लादने का प्रयास किया था।

लॉर्ड डलहॉजी की राज्य हड़पने की नीति (*डाक्ट्रिन ऑफ लैप्स*) के अन्तर्गत अनेक राज्य जैसे झांसी, अवध, सतारा, नागपुर और संबलपुर को अंग्रेजी राज्य में मिला लिया गया और इनके उत्तराधिकारी राजा से अंग्रेजी राज्य से पेंशन पाने वाले कर्मचारी बन गये। शाही घराने, जमींदार और सेनाओं ने

अपने आप को बेरोजगार और अधिकारहीन पाया। ये लोग अंग्रेजों के हाथों अपनी शर्मिदगी और हार का बदल लेने के लिये तैयार थे। लॉर्ड डलहौजी के शासन के आठ वर्षों में दस लाख वर्गमील क्षेत्र को कंपनी के अधिकार में ले लिया गया। इसके अतिरिक्त ईस्ट इंडिया कंपनी की बंगाल सेना में बहुत से सिपाही अवध से भर्ती होते थे, वे अवध से होने वाली घटनाओं से आछूते नहीं रह सके।

भारतीय कंपनी के कठोर शासन से भी नाराज थे जो कि तेजी से फैल रहा था और पश्चिमी सभ्यता का प्रसार कर रहा था। अंग्रेजों ने हिन्दुओं और मुसलमानों के उस समय माने जाने वाले बहुत से रिवाजों को गैरकानूनी घोषित कर दिया जो कि अंग्रेजों द्वारा असामाजिक माने जाते थे। इसमें सती प्रथा पर रोक लगाना शामिल था। यहां ध्यान देने योग्य बात यह है कि सिखों ने यह बहुत पहले ही बंद कर दिया था और बंगाल के प्रसिद्ध समाज सुधारक राजा राममोहन राय इस प्रथा को बंद करने के पक्ष में प्रचार कर रहे थे। इन कानूनों ने समाज के कुछ पक्षों मुख्यतः बंगाल में क्रोध उत्पन्न कर दिया। अंग्रेजों ने बाल विवाह प्रथा को समाप्त किया तथा कन्या भ्रूण हत्या पर भी रोक लगायी। अंग्रेजों द्वारा ठगी की समाप्ति भी की गई परन्तु यह संदेह अभी भी बना हुआ है कि ठग एक धार्मिक समुदाय था या केवल साधारण डकैतों का समुदाय।

खेती करने वाले किसानों की हालत भी खराब थी। ब्रितानी शासन के प्रारंभ में किसानों को जमींदारों की दया पर छोड़ दिया गया, जिन्होंने लगान को बहुत बढ़ा दिया और बेगार तथा अन्य तरीकों से किसानों का शोषण करना प्रारंभ कर दिया। कंपनी ने खेती के सुधार पर बहुत कम खर्च किया और अधिकतर लगान कंपनी के खर्चो को पूरा करने में प्रयोग होता था। फसल के खराब होने की दशा में किसानों को साहूकार अधिक ब्याज पर कर्जा देते थे और अनपढ़ किसानों को कई तरीकों से ठगते थे। ब्रितानी कानून व्यवस्था के अन्तर्गत भूमि हस्तांतरण वैध हो जाने के कारण किसानों को अपनी भूमि से भी हाथ धोना पड़ता था। इन समस्याओं के कारण समाज के हर वर्ग में असंतोष व्याप्त था।

गौरतलब है कि सिपाही मूलतः कंपनी की बंगाल सेना में काम करने वाले भारतीय मूल के सैनिक थे। बम्बई, मद्रास और बंगाल प्रेसीडेन्सी की अपनी

अलग सेना और सेनाप्रमुख होता था। इस सेना में ब्रितानी सेना से अधिक सिपाही थे। सन् 1857 में इस सेना में 2,57,000 सिपाही थे। बम्बई और मद्रास प्रेसीडेन्सी की सेना में अलग–अलग क्षेत्रों के लोग होने की कारण ये सेनाएं विभिन्नता से पूर्ण थी और इनमें किसी एक क्षेत्र के लोगों का प्रभुत्व नहीं था। परन्तु बंगाल प्रेसीडेन्सी की सेना में भर्ती होने वाले सैनिक मुख्यतः अवध और बिहार के मैदानी इलाकों के भूमिहार, ब्रह्मण और राजपूत थे। कंपनी के प्रारंभिक वर्षों में बंगाल सेना में जातिगत विशेषाधिकारों और रीतिरिवाजों को महत्व दिया जाता था परन्तु सन् 1840 के बाद कलकत्ता में आधुनिकता पसन्द सरकार आने के बाद सिपाहियों में अपनी जाति खोने की आशंका व्याप्त हो गयी। सेना में सिपाहियों को जाति और धर्म से सम्बन्धित चिन्ह पहनने से मना कर दिया गया। सन् 1856 में एक आदेश के अन्तर्गत सभी नये भर्ती सिपाहियों को विदेश में कुछ समय के लिये काम करना अनिवार्य कर दिया गया। सिपाही धीरे–धीरे सेना के जीवन के विभिन्न पहलुओं से असंतुष्ट हो चुके थे। सेना का वेतन कम था। भारतीयों सैनिकों का वेतन महज सात रूपये प्रतिमाह था। और अवध और पंजाब जीतने के बाद सिपाहियों का भत्ता भी समाप्त कर दिया गया था। एनफील्ड बंदूक के बारे में फैली अफवाहों ने सिपाहियों की आशंका को और बढ़ा दिया कि कंपनी उनकी धर्म और जाति परिवर्तन करना चाहती है।

दरअसल विद्रोह का प्रारंभ एक बंदूक की वजह से हुआ। सिपाहियों को पैर्टन 1853 एनफील्ड बंदूक दी गयी जो कि 0577 कैलीबर की बंदूक थी तथा पुरानी और कई दशकों से उपयोग में लायी जा रही ब्राउन बैस के मुकाबले में शक्तिशाली और अचूक थी। नयी बंदूक में गोली दागने की आधुनिक प्रणाली का प्रयोग किया गया था परन्तु बंदूक में गोली भरने की प्रक्रिया पुरानी थी। नयी एनफील्ड बंदूक भरने के लिये कारतूस को दांतों से काट कर खोलना पड़ता था और उसमें भरे हुए बारूद को बंदूक की नली में भर कर कारतूस को डालना पड़ता था। कारतूस का बाहरी आवरण में चर्बी होती थी जो कि उसे पानी की समीन से बचाती थी।

सिपाहियों के बीच अफवाह फैल चुकी थी कि कारतूस में लगी हुई चर्बी सुअर और गाय के मांस से बनायी जाती है। यह हिन्दू और मुसलमान सिपाहियों दोनों की धार्मिक भावनाओं के विरूद्ध था । ब्रितानी अफसरों ने इसे

अफवाह बताया और सुझाव दिया कि सिपाही नये कारतूस बनाये जिसमें बकरे या मधुमक्क्खी की चर्बी प्रयोग की जाये। इस सुझाव ने सिपाहियों के बीच फैली इस अफवाह को और पुख्ता कर दिया। दूसरा सुझाव दिया गया कि सिपाही कारतूस को दांतों से काटने की बजाय हाथों से खोलें। परन्तु सिपाहियों ने इसे ये कहते हुए अस्वीकार कर दिया कि वे कभी भी नयी कवायद को भूल सकते हैं और दांतों से कारतूस को काट सकते हैं।

ध्यातव्य है कि 1857 के पूर्व के सौ वर्षों में अंग्रेजी शासन के खिलाफ विभिन्न कारणों से बिहार के आम लोगों के बीच व्यापक असंतोष व्याप्त था, जिनकी चिंगारियां इनके प्रतिरोधों के रूप में समय–समय पर निकलकर सामने आई थी। विद्रोह की इन चिनगारियों को महाज्वाला के रूप में परिवर्तित करने का काम 'बैरकपुर' की सैनिक छावनी के सिपाहियों और उनके नेता 'मंगल पांडे' ने किया। मंगल पांडे और उनके सहयोगियों को फांसी दिये जाने की घटना से भारतीय सिपाही अत्यंत उत्तेजित थे। जैसे–जैसे यह खबर भारत के सिपाहियों के बीच अन्य सैनिकों की छावनियों में पहुंची, उनके बीच अंग्रेजी सरकार के खिलाफ आक्रोश तीव्र होता गया। 1857 के मध्य तक इसने जबरदस्त विद्रोह का रूप ले लिया था, जब अधिकारियों के दमनकारी तथा अन्यायपूर्ण निर्णयों के खिलाफ विद्रोह का बिगुल फूंकते हुए मेरठ के तीन रेजीमेंटों के सिपाहियों ने 10 मई को दिल्ली के लिए प्रस्थान किया।

बैरकपुर में 29 मार्च 1857 को मंगल पाण्डे के विद्रोह की घटना के बाद भले बंगाल में विद्रोह का असर नहीं पड़ा, लेकिन देवघर के *रोहिणी* में 12 जून 1857 को पाँचवी देशी घुड़सवार सेना के कुछ सवारों ने विद्रोह कर दिया। मेरठ में विद्रोह के बाद रोहिणी में हुआ यह हमला बिहार में सन् 1857 के विद्रोह से जुड़ी पहली घटना थी। विद्रोहियों ने अचानक हमला कर लेफ्टिनेट सर नर्मन लेस्ली को मार डाला और दो अन्य को घायल कर दिया। हालाँकि मेजर मैक्डोनाल ने तत्परता से इसे दबा दिया। यद्यपि रोहिणी की घटना की तत्काल कोई प्रतिक्रिया दानापुर की सैनिक छावनी पर नहीं हुई, किन्तु 19 जून, 1857 को पटना के नागरिकों की एक बैठक से निकलते समय संदेह के आधार पर तीन मौलवियों की गिरफ्तारी ने पूरे शहर में सनसनी फैलाने का काम किया। इन गिरफ्तरियों के खिलाफ 3 जुलाई को पुस्तक विक्रेता 'पीर अली' के नेतृत्व में सैकड़ों मुसमलान पटना की सड़कों पर उतर आए। अंग्रेजी सरकार की ओर से

गोलियों के चलाए जाने के कारण लोग अत्यधिक उत्तेजित हो गए और भीड़ ने एक अंग्रेज को मार डाला। इस हत्याकांड के उपरांत अंधाधुंध गिरफ्तारियां हुई और 4 जुलाई को पीर अली समेत अन्य कई लोगों को सार्वजनिक स्थल पर फांसी दे दी गई। इन घटनाओं के कारण स्वाभाविक रूप से पूरे शहर में तनाव और आतंक का वातावरण कायम हो गया।

दानापुर फौजी छावनी में सिपाहियों के विद्रोह का बिगुल 25 जुलाई, 1857 को उस समय बजा जब 7वीं, 8वीं और 40 वीं बटालियनों के सैनिकों के हथियार लेने की कार्रवाई शुरू की गयी। 26 जुलाई को इन विद्रोहियों ने सोन नदी पार किया और 27 जुलाई को वे आरा पहुंचे। आरा में सर्वप्रथम उन लोगों ने जेल में बंद कैदियों को रिहा किया। उनके आगमन की खबर मिलते ही बाबू कुंवर सिंह आरा पहुंचे जहां सिपाहियों ने फौजी सलामी देकर उनका स्वागत किया। अंग्रेजों के विरूद्ध विद्रोह का नेतृत्व संभालने के पश्चात् बाबू कुंवर सिंह ने फिर कभी मुड़कर पीछे नहीं देखा। अपने सहयोगियों की मदद से उन्होंने तत्काल आरा में नागरिक प्रशासन स्थापित किया।

1857 की लड़ाई में कुंवर सिंह ने बाजाप्ता पूर्व सैनिकों, अपने समकालीन साथियों और अपने समर्थकों को साथ लेकर विद्रोहियों की फौज को सजाया था। विद्रोहियों की फौज में जनरल, सूबेदार, कमांडर, ब्रिगेडियर और सिपाही थे। सबके इलाके बांटे गए थे। अंग्रेजी राज के समानान्तर कोर्ट–कचहरी की व्यवस्था की गई थी। विद्रोहियों की फौज में सभी जातियों और धर्मो को मानने वाले लोग थे। पदाधिकारियों की संख्या 42 थी। इस सूची में 2 कैप्टन, 6 जनरल, 2 आश्वारोही सेना के जनरल, 1 ब्रिगेडियर, 5 सूबेदार, 4 सरदार, 1 चीफ ऑफिसर, 1 कलक्टर, 1 मुंसिफ, 1 मजिस्ट्रेट और चार अदालत के ऑफिसर थे। यह अंग्रेजों के पैटर्न पर थी। क्रांतिकारी सरकार के मुख्य न्यायालय के चार सदस्य थे। 29 जनवरी, 1858 को शाहाबाद के मजिस्ट्रेट एच.सी. बैग ने पटना के कमिश्नर को लिखा कि शाहाबाद के दक्षिणी इलाकों में अमर सिंह की छापामार लड़ाई ने अंग्रेज अफसरों को कुछ महीने तक परेशान कर रखा था।

अंग्रेजों द्वारा आरा पर पुनः कब्जा स्थापित करने के पश्चात् बाबू कुंवर सिंह ने जंगलों में शरण ली और वहीं से विद्रोहियों का नेतृत्व करते रहे। उनकी मृत्यु के बाद उनके छोटे भाई बाबू अमर सिंह ने कुछ महीनों तक बहुत कुशलता के साथ अंग्रेज विरोधी अभियान को जारी रखा। अमर सिंह के प्राधिकार में

जगदीशपुर में जो सरकार कायम की गई थी, उसके वास्तविक नेता हरकिशन सिंह थे। जनता की सुख–शांति और उन्नति इस शासन का ध्येय था। उसका सैनिक संगठन काफी दृढ़ था। सैनिक और असैनिक दोनों विभागों में अफसर थे। उदाहरण के लिए हथियारों के कारखाने के अधीक्षक और सेनापति बगैरह थे। सेना का विभाजन स्थानों के नाम पर किया गया था – चौगांई ब्रिगेड वाहिनी, कारीसाथ ब्रिगेड वाहिनी आदि। जगदीशपुर के पश्चिम, उत्तर और पूरब में खाइयां खोदी जा रही थी। जगदीशपुर में करीब 2000 सिपाही और 600 रंगरूट थे। दो हजार सिपाहियों में से डेढ़ हजार के पास बन्दूकें थीं और बाकी के पास तलवारें। सुबह और शाम देसी अफसरों और पुराने सिपाहियों द्वारा रंगरूटों की कवायद कराई जाती थी।

1857–58 में सोन तट के दोनों किनारे बसे गांवों में भारी उथल–पुथल रही। विद्रोहियों ने मिस्टर सोलानों की अफीम फैक्टरी को आग लगा दी और विक्रम थाना जला दिया था। पालीगंज स्थित अफीम कारखाना भी जला दिया गया। बिहार में नावादा की पहाड़ियों में रजवारों का विद्रोह 1857 में हुआ था। राजगीर और नावादा थाना को एक तरह से रजवारों ने मुक्त कर लिया था। नवादा और राजगीर की पहाड़ियां उनकी शरणस्थली बनी।

मुजफ्फरपुर में जून के महीने से ही सरगर्मी शुरू हो गई थी। यूरोपियन प्लांटर आंतकित हो गए थे। शहर के बनिए भी आतंकित थे। 31 जुलाई 1857 को मुजफ्फरपुर में 11वीं पैदल सेना के सवारों ने विद्रोह कर दिया। विद्रोही सिपाहियों ने कलक्टर के आवास और थाना पर धावा बोल दिया। न्यायाधीश और कलक्टर के घर को लूटा। विद्रोहियों ने जेल से कैदियों को छुड़ाने और ट्रेजरी को लूटने की कोशिश की। मुजफ्फरपुर थाना के दरोगा शेख जहूर अली को विद्रोहियों ने अपने कब्जे में ले लिया। विद्रोहियों को गिरफ्तार करने के लिए कड़ी कार्रवाई की गई और नेपाल से किसी भी आदमी के आने पर रोक लगा दी गई। अखबारों पर भी प्रतिबंध लगा दिया गया।

उत्तर बिहार के अंग्रेज अधिकारियों ने अपने हल्कों में कठोर दमननीति चलाना शुरू कर दिया था। उस क्षेत्र में रहनेवाले निलहे साहब तथा दूसरे यूरोपीय जून, 1857 में विद्रोह भड़क उठने की आशंका से घबड़ाए हुए था। 12वीं ईरेंगुलर कैवेलरी के मेजर ई. एस. होम्स (चम्पारण जिला के अनुमंडलीय मुख्यालय सुगौली में पदस्थापित) ने उस क्षेत्र में आन्दोलन को दबाने के लिए मनमाने

तरीके से आतंक बरपा रखा था। मेजर होम्स ने अपने प्राधिकार से मार्शल लॉ लागू कर दिया था। लेकिन होम्स के तमाम प्रयासों के बावजूद उत्तर बिहार में विद्रोही सैनिकों ने कमान संभाल ली। दानापुर रेजिमेंट ने 25 जुलाई को विद्रोह किया और उसी दिन शाम में चम्पारण जिला के मुख्यालय मोतिहारी के सुगौली में घुड़सवार पलटन का विद्रोह शुरू हो गया। विद्रोहियों ने मेजर होम्स, उसकी पत्नी, डॉक्टर गार्नर, उनके एक बच्चे तथा डिप्टी पोस्ट मास्टर मिस्टर विनेट की हत्या करने के बाद सीवान होते हुए उत्तर पश्चिम की ओर चले गए। चम्पारण में होम्स की हत्या की घटना के बाद विकट स्थिति थी।

सीवान में 26 जुलाई से 3 सितम्बर तक सरकार गायब रही। 28 जुलाई 1857 तक छपरा शहर अंग्रेज अधिकारियों से खाली हो गया था। यह सिलसिला 12 अगस्त 1857 तक चलता रहा।

1857 में विद्रोह के दौरान गया में भारी हलचल थी। जगदीशपुर विद्रोह का केन्द्र बन गया था। गया जेल पर 3 अगस्त, 1857 को विद्रोहियों ने कब्जा कर लिया। शहर को विद्रोहियों ने दस दिनों तक अपने कब्जे में रखा और घोषणा कर दी कि अंग्रेजी राज खत्म हो गया और हिन्दुस्तानी राज आ गया।

नवादा पर 24 अगस्त, 1857 को विद्रोहियों ने कब्जा जमा लिया। नवादा में पांचवीं घुड़सवार सेना के विद्रोहियों ने कचहरी को जला दिया। छह सितम्बर को विद्रोहियों ने फतेहपुर थाना को भी आग के हवाले कर दिया। थाना से सटे अनेक मकान जल गए।

सहार के एकवारी थाने पर विद्रोहियों ने 20 अगस्त, 1857 को कब्जा कर लिया था। विद्रोही थाना के मुहर्रिर मीर इनायत हुसैन, कोईनचंद बरकंदाज, पीताम्बर पांडेय और चकोरी राय को पकड़ कर अपने साथ लेते गए। वे उन्हें पकड़ कर मीजा सिकरिया ले गए और उनका सिर कलम कर दिया। मुहर्रिर मीर इनायत हुसैन की विद्रोहियों ने बाँह काट दी। 8 दिसम्बर, 1857 की रात तेलकाप फैक्टरी पर हमला हुआ था। यह फैक्टरी तिलौथू के पास थी। हमलावारों ने फैक्टरी में आग लगा दी थी।

छोटानागपुर अंचल में सन् सत्तावन के स्वतंत्रता संग्राम की सर्वप्रमुख घटना थी रामगढ़ बटालियन का विद्रोह। इस विद्रोह के परिणामस्वरूप अंग्रेज अधिकारियों को प्रमण्डलीय मुख्यालय से भागना पड़ा, करीब चालीस दिनों

तक रांची पर विद्रोही सैनिकों का कब्जा रहा और उनके द्वारा स्थापित सरकार कार्य करती रही।

1857 के विद्रोह की मुख्य शक्ति किसान थे– बागी सिपाही भी वर्दीधारी किसान ही थे। इन्होंने अपने वर्ग स्वभाव के अनुरूप विद्रोह का नेतृत्व जागीरदारों को सौंप दिया या उन पर थोप दिया था। लेकिन ये राजा अथवा जागीरदार ब्रिटिश औपनिवेशिक शासकों के खिलाफ भारतीय जनता की वृहत्तम संभव एकता के लिए जरूरी राजनीतिक कार्यक्रम तथा नेतृत्व विकसित करने में अक्षम थे और सन् सत्तावन में अक्षम साबित हुए । यह सन् सत्तावन की सीख थी। इसका मतलब यह नहीं कि विद्रोह का नेतृत्व करनेवाले इन सभी जागीरदारों ने अपने कर्त्तव्य के निर्वहन में कोई कोतही की थी या फिर विद्रोह के साथ विश्वासघात किया था।

बिहार के ज्यादातर ऐसे जागीरदार नेता शुरू से अंत तक विद्रोहियों के साथ संघर्ष में डटे रहे। बावजूद इसके कि उनके वर्ग के ज्यादातर बड़े मंझोले सदस्य अंग्रेजी शासन के साथ थे और उनके सामने भी रियायत तथा पुरस्कार के दरवाजे खुले थे। बहरहाल, देशभक्तिपूर्ण बलिदान का मद्दा और देशमुक्ति के योग्य नेतृत्व क्षमता एक चीज नहीं है। कुर्बानी का जज्बा जरूरी है, लेकिन वह एक उपयुक्त राजनीतिक कार्यक्रम की जरूरत को स्थानापन्न नहीं कर सकती। जागीरदार होने के बावजूद इन नेताओं ने किसी प्रतिगामी अथवा साम्प्रदायिक रूझान का भी प्रदर्शन नहीं किया। किसी बड़े आन्दोलन में कुछेक कट्टर रूढ़िवादी तत्वों की मौजूदगी से इंकार नहीं किया जा सकता। लेकिन बिहार में चले 1857 के इस विद्रोह में हम इस विद्रोह की राजनीतिक कमान थामे जागीरदार नेताओं में किसी ऐसे रूझान का साक्षात्कार नहीं करते।

1857 के विद्रोह के दौरान बिहार के विद्रोहियों के पास शत्रु फौज की गतिविधियों की निरन्तर सूचना देनेवाला तंत्र विकसित करने के लिए काफी अनुकूल स्थितियां थीं– वे आम जनसमुदाय से घुलेमिले थे और उन्हें व्यापक जन समर्थन प्राप्त था। जबकि शत्रु सेना इस तरह के तंत्र के लिए अपने समर्थक जागीरदारों और उनके लोगों तथा भेदियों पर निर्भर थी। विद्रोहियों के पास ऐसा तंत्र था भी और अनेक अवसरों पर वे सुविधानुसार पीछे भी हटे थे या फिर आगे बढ़कर अचानक धावा भी बोला था। कई अवसरों पर उन्होंने अंग्रेजी फौज के भेदियों और संवाद वाहकों को पकड़ा भी था। लेकिन अनेक निर्णायक मौकों पर

उनका यह तंत्र अत्यंत शिथिल भी पाया गया जिसके परिणामस्वरूप पहल अंग्रेजी फौजी टुकड़ियों के हाथों में आ गई।

दरअसल, किसी विद्रोह में शामिल विभिन्न वर्गों, समुदायों और तबकों की वृहत्तम संभव एकता स्थापित करनेवाले राजनीतिक कार्यक्रम के आधार पर एक लम्बे संघर्ष का संचालन करने वाला राजनीतिक नेतृत्व केन्द्र विकसित होता है, और फिर यही राजनीतिक केन्द्र अपने पास उपलब्ध विद्रोही दलों की सैन्यगतिविधियों को भी समयानुसार समन्वित करता है। ऐसे राजनीतिक केन्द्र के अभाव में अथवा कमजोर केन्द्र की स्थिति में समन्वित सैन्य गतिविधियों का संचालन करनेवाली सैनिक कमान का भी गठन नहीं हो सकता । ऐसी सैनिक कमान के तहत ही विद्रोही दल समयानुसार स्वायत्त अथवा एक केन्द्रित कमान के तहत समन्वित कार्रवाइयों को अंजाम दे सकते थे। इसकी अनुपस्थिति में विद्रोही दलों की स्वायत्ता उनकी अलग–अलग कार्रवाइयों का रूप ले लेती, जिन्हें कुचलना अंग्रेजी फौजी टुकड़ियों के लिए अपेक्षाकृत आसान हो जाता। स्थानीय स्तर पर विद्रोही दलों ने कुछेक अवसरों पर समन्वित कार्रवाइयों को अंजाम दिया था, लेकिन वह अत्यन्त प्राथमिक स्तर की समन्वित कार्रवाइयां ही थीं। राजनीतिक नेतृत्व की जो अपरिपक्व स्थिति थी, उसमें संभवतः इससे आगे जाना तब शायद संभव भी नहीं था। दूसरी तरफ, अंग्रेजों के निश्चित राजनीतिक लक्ष्य थे, उनकी अपनी एक विकसित सैनिक कमान थी, और इसके परिणामस्वरूप उनकी फौजी टुकड़ियां पूरी नमनीयता के साथ जरूरत पड़ने पर कभी पीछे हट जाती और कभी स्वायत्त कार्रवाइयां बरतीं।

1857 के विद्रोह के पीछे जो भावनाएँ थीं वे विदेशियों के खिलाफ थीं, लेकिन इस विद्रोह का कोई निश्चित राष्ट्रीय स्वरूप नहीं था। इस विद्रोह में जिन विभिन्न तत्वों ने भाग लिया, उन्हें कभी यह बोध नहीं हुआ कि वे एक ऐसे राष्ट्र के अंग है जिसका सम्मिलित आर्थिक और राजनीतिक अस्तित्व हो सकता है। विद्रोह के सामंती नेताओं के राजनीतिक कार्यक्रम का बस एक ही नकारात्मक उद्देश्य था, विदेशियों को निकाल बाहर करना। उन्होंने सारे देश के लिए राष्ट्रीय राज्यतंत्र की स्थापना की न तो कोई योजना बनाई और न वे ऐसा कर ही सकते थे। वैसे ही भारतीय समाज के निर्माण के लिए उन्होंने न तो कोई कार्यक्रम तैयार किया और न वे ऐसा कर ही सकते थे। उनमें राष्ट्रीय चेतना का अभाव था। वस्तुतः उनमें केवल विदेशियों को निकाल बाहर करने के सवाल पर

ही एकता थीं। इसके बदले ये पुराना प्राक् ब्रिटिश खंडित सामंती भारत वापस लाना चाहते थे, या संभवतः दिल्ली के सम्राट के अधीनस्थ सामंती राज्यों का राज्य संघ बनाना चाहते थे।

सन् सत्तावन के विद्रोह ने विभिन्न वर्गों और समुदायों में जो हलचल पैदा की थी, वह अब थमने नहीं जा रही थी। 1869–72 की जनगणना की पृष्ठभूमि में विभिन्न जातीय और धर्म सुधार आन्दोलनों की शुरूआत हुई। सर्वे सेट्रलमेण्ट तथा काश्तकारी अधिनियमों की पृष्ठभूमि में विभिन्न अंचलों में रैयतों के आन्दोलन फूट पड़े। इसी समय जनजातीय इलाकों में भी नए सुधार आन्दोलनों का आगाज हुआ। उद्योग धंधों के विकास से आधुनिक औद्योगिक मजदूर वर्ग का जन्म हुआ और फिर मजदूर यूनियनों के निर्माण के प्रयास शुरू हुए। इंडिया काउन्सिल के गठन के बाद आधुनिक शिक्षा में शिक्षित मध्यवर्ग ने इस काउन्सिल में भारतीयों के प्रतिनिधित्व और सिविल सेवा की परीक्षाओं में भारतीयों के प्रवेश की मांग रखनी शुरू की। विभिन्न प्रदेशों में इंडियन एसोसिएशनों का गठन हुआ। आगे चलकर, सुधार की इन विभिन्न धाराओं ने एक बड़े राष्ट्रीय आन्दोलन की जमीन तैयार की।

संदर्भ ग्रंथ सूची :

1. चौधरी, प्रसन्न कुमार/श्रीकांत, 1857 : *बिहार में महायुद्ध,* राजकमल प्रकाशन, नई दिल्ली, 2015,पृ. 15
2. मेजर मेकडोनाल्ड का पांचवी घुड़सवार दस्ते के सेकेन्ड –इन–कमांड, *कैप्टन वाटसन को पत्र,* 16 जून 1857
3. दत्त के.के. *अनरेस्ट अगेनस्ट ब्रिटिश रूल इन बिहार 1831–1859,* पटना, 1957, पृ. 36–44
4. दत्त, के.के. *बिहार में स्वातंत्र्य आंदोलन का इतिहास,* बिहार हिन्दी ग्रंथ अकादमी, पटना, 1998, पृ. 17
5. सिंह, एस.पी. ''बिहार : द लैंड ऑफ रेसिसटेन्स, रेबेलियन एण्ड रिवोल्ट्स 1757–1857'' *जर्नल ऑफ सोशल एण्ड इकोनोमिक स्टडीज,* ए.एन. सिन्हा इंस्टियूट, पटना, वाल्यूम XXII, नं.2, जुलाई–दिसम्बर 2012, पृ. 75–88
6. के.जॉन विलियम, *हिस्ट्री ऑफ द सिपाही बार इन इंडिया 1857–58,* रिप्रिंट, खण्ड–3, ज्ञान पब्लिशिंग, दिल्ली, 1988, पृ. 74
7. ठाकुर, जे.के. ''मूवमेंट ऑफ 1857–58 इन तिरहुत'' *जर्नल ऑफ बिहार रिसर्च सोसाएटी,* पटना, 1975, वाल्यूम LXI, पृ. 105